रजि. नं. पी.बी./जे.एल–/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–74, अंक : 13, 22-25 जून 2017 तदनुसार 11 आषाढ़ सम्वत् 2074 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

हवि–रहित यज्ञ

-ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

यत्पुरुषेण हविषा यज्ञं देवा अतन्वत।
अस्ति नु तस्मादोजीयो यद्विहव्येनेजिरे।।

-अथर्व० ७।५।४

शब्दार्थ-देवा : = निष्काम ज्ञानी **पुरुषेण+हविषा** = पुरुष-सम्बन्धी हवि से **यत्** = जो **यज्ञम्** = यज्ञ **अतन्वत** = करते हैं, **नु** = सचमुच वह यज्ञ **तस्मात्** = उससे **ओजीयः** = अधिक ओजस्वी **अस्ति** = है, **यत्** = जिसका वे **विहव्येन** = हविरहित सामग्री से **ईजिरे** = यजन करते हैं।

व्याख्या-यज्ञ में अग्नि, समिधा, घृत और हवि आवश्यक हैं। अग्नि में समिधा डालकर, उसे प्रदीप्त करके घृत तथा हवि के द्वारा जहाँ उस अग्नि को अधिक प्रदीप्त करना होता है, वहाँ घृत और हवि अग्नि में पड़कर अधिक उपयोगी हो जाते हैं। हविः अग्नि में पड़ने से पूर्व कोई विशेष सुगन्ध नहीं देता, अग्नि में पड़कर वह सुगन्ध देने लगता है और अग्नि वायु की सहायता से उस सुगन्ध का प्रसार करके, जहाँ-जहाँ वह सुगन्ध पहुँचता है वहाँ-वहाँ से दुर्गन्ध को दूर करके वायु-शुद्धि आदि का कार्य करता है। यही अवस्था घृत की है। यह एक वैज्ञानिक सच्चाई है, जिसका अपलाप नहीं किया जा सकता। इस प्रकार के यज्ञों को द्रव्ययज्ञ या हविर्यज्ञ कहते हैं। इन द्रव्ययज्ञों से वायु आदि द्रव्यों की शुद्धि के साथ अन्तःकरण की शुद्धि भी थोड़ी-बहुत हो जाती है, क्योंकि इस प्रकार के यज्ञों से परोपकार अवश्य होता है।

वेद इस प्रकार के यज्ञों का विधान करता हुआ इससे भी उत्कृष्ट यज्ञ का विधान करता है, जिसमें किसी द्रव्य की आहुति न देकर अपनी आहुति देनी होती है। इस प्रकार के हविरहित यज्ञ को वेद बलवत्तर मानता है। उस यज्ञ का साङ्केतिक निरूपण अथर्ववेद [१९।४२] में है-

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः।
अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः।।१।।
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः।
शमिताय स्वाहा।।२।।

वैदिक भारत-कौशल भारत

आर्य महासम्मेलन 5 नवम्बर को नवांशहर में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में आगामी आर्य महासम्मेलन वैदिक भारत–कौशल भारत **5 नवम्बर 2017** रविवार को नवांशहर में करने का निश्चय किया गया है। इस अवसर पर उच्चकोटि के वैदिक विद्वान् वक्ता, सन्यासी, संगीतज्ञ एवं नेतागण पधारेंगे। कार्यक्रम की विस्तृत सूचना समय–समय पर आपको आर्य मर्यादा साप्ताहिक द्वारा मिलती रहेगी। इसलिए 5 नवम्बर 2017 की तिथि को कोई कार्यक्रम न रखकर पंजाब की सभी आर्य समाजें अधिक से अधिक संख्या में नवांशहर में पहुंच कर अपने संगठन का परिचय दें।

-प्रेम भारद्वाज
महामन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

ब्रह्म होता है, ब्रह्म यज्ञ है, ब्रह्म से स्वर बनाये गये हैं। ब्रह्म से अध्वर्यु उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म से हवि आच्छादित है।। ब्रह्म ही घृत से भरी स्रुचाएँ हैं, ब्रह्म से वेदी बनाई गई है। ब्रह्म ही यज्ञ का तत्त्व हरि डालने वाले ऋत्विक् हैं, अतः शान्ति के लिए स्वाहा।

सबसे बड़ा यज्ञ वही है, जिससे संसार में शान्ति फैले। उस यज्ञ का होता, अध्वर्यु और अन्य सब ऋत्विक् ब्रह्म होना चाहिए। इतना ही नहीं, यज्ञ का सकल साकल्य भी ब्रह्म हो, यज्ञ के साधन, स्रुवा, वेदी आदि भी ब्रह्ममय हों, यज्ञ का तत्त्वसार भी ब्रह्म हो, इससे उसे 'शमिताय स्वाहा' कहा जा सकता है। यह महान् यज्ञ तभी हो सकता है जब अपना-आपा सर्वथा ब्रह्म के अर्पण कर दिया हो और अपने-आपको ब्रह्म का हथियार बना दिया हो। तब कर्तृत्व हमारा न होगा, ब्रह्म का होगा। द्रव्ययज्ञ उस यज्ञ की पहली सीढ़ी है। तभी प्रत्येक आहुति के साथ '**इदन्न मम**' [यह मेरा नहीं है] कहना होता है। जिस दिन वास्तव में समझकर '**इदन्न मम**' कहा जाएगा, उस दिन उस यज्ञ का प्रारम्भ होगा। **(स्वाध्याय संदोह से साभार)**

वेद ज्ञान में पारंगत वैराग्यवान आजीवन ब्रह्मचारी

-ले. डॉ. अशोक आर्य १०४ शिप्रा अपार्टमेन्ट, कौशाम्बी २०१०१० गाजियाबाद चलभाष ०९३५४७४५४२६

हम जानते हैं कि वेद का आदेश स्त्री शिक्षा के लिए बड़े ही विस्तार से दिया गया है। स्त्रियों के लिए विस्तृत शिक्षा का जो विधान दिया है, वात्स्यायन ऋषि ने तो इस सम्बन्ध में कहा भी है कि स्त्रियों को छत्तीस प्रकार की विद्याओं का ज्ञान होना आवश्यक है। प्रचलित भाषा में छत्तीस प्रकार के इस शब्द के प्रयोग से अभिप्राय: सब प्रकार के ज्ञान से होता है। अमृतधारा छत्तीस रोगों की औषध आयुर्वेद में एक ओषध आती है, इस ओषध का नाम है अमृतधारा। इस ओषध को अमृतधारा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस ओषध से प्राय: सब प्रकार के रोगों का उपचार किया जा सकता है। इस ओषध की इस विशेषता के कारण मैं इस ओषध को प्राय: अपने पास रखता हूँ। मैं ही नहीं मेरे परिवार के सब सदस्य और यहाँ तक कि मेरे बहुत से मित्र भी मेरे से इस की चर्चा सुनकर इस ओषध को प्राय: अपने पास रखते हैं।

अमृतधारा का लकवे (अध-रंग) पर प्रयोग-इस दवा के लिए मेरे परिवार के एक सदस्य के साथ घटित घटना इस प्रकार है एक बार लुधियाना में मेरी बेटी किसी के घर गयी थी। उसके घर में रहते हुए ही उस परिवार के एक सदस्य को लकवे का हमला हो गया। बेटी के पर्स में अमृतधारा थी। उसने झटपट अमृतधारा निकाली और उस के शरीर पर मालिश कर दी। इतने मात्र से वह व्यक्ति बच गया और रोग का प्रभाव समाप्त हो गया। इसलिए ही कहा गया है कि हमारी महिलायें छत्तीस प्रकाश की शिक्षाओं की स्वामी हों।

अमृतधारा का दस्तों पर प्रयोग एक बार मैं महाराष्ट्र के लातूर नामक स्थान पर वेद प्रचार के लिए गया था। रात्री के समय हैदराबाद निवासी भजनोपदेशक पं. प्रेमचन्द जी मेरे पास आये और कहनें लगे अशोक जी मुझे लूज मोशन हो गया है। नब्बे वर्षीय व्यक्ति को तो दो बार शोच जाना पड़े तो उसके लिए बिस्तर से उठना कठिन हो जाता है। यह तो लूज मोशन था। मैंने उनको अमृतधारा की दो बूंद चीनी में डाल कर खिला दी। वह प्रात: काल मेरे पास आये और कहने लगे अब मुझे कब्ज हो गया है। मैंने कहा यह तो अच्छा लक्षण है आप को कुछ ही देर में शोच साफ़ आ जावेगा। वही हुआ एक घंटे बाद कहते अब मुझे शोच आ गया है और मैं बिल्कुल ठीक हूँ। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण मेरे पास है। इस प्रकार के ओषध महिलाओं के पास सदा होने चाहियें।

यह अमृतधारा नामक ओषध भी छत्तीस प्रकार के रोगों का निदान करने वाली है। खांसी, जुकाम, खारिश, फोड़ा, फुंसी, चोट, चोट से होने वाली सोजिश, हड्डी टूटना, कान दर्द, जोड़ दर्द, शरीर के अन्य दर्द, गैस, अपचन, टट्टियाँ, उलटी, लकवा आदि प्रत्येक रोग में इससे लाभ होता है। इसलिए इस दवा का प्रतिक्षण अपने पास होना ही चाहिए।

अमृतधारा बनाने की विधि-इसे बनाने के लिए दस-दस ग्राम अजवायन का सत्व, पिपलामेंट तथा कपूर को एक ढक्कन वाली शीशी में डाल लेवें दस मिनट में यह सब पानी बन जावेगा और दवा तैयार हो जावेगी। यह खाने और लगाने के दोनों काम में आती है। इसे बनाकर अवश्य प्रयोग करें, लाभ मिलेगा। इस शीशी को एक शक्कर के छोटे डिब्बे में रख देवें कुछ दिन में यह शक्कर हाजमेदार दवा बन जावेगी। इसे केवल पेट की बीमारियों में प्रयोग करें और कहीं प्रयोग न करें। यह लाभ देने वाला एक प्रकार का चूर्ण बन जाता है। भोजन के पश्चात् प्रतिदिन इसे खा सकते हैं किन्तु इस शीशी का ढक्कन आवश्यकता के समय ही खोलें और फिर इसे बंद कर देवें अन्यथा यह दवा उड़ जावेगी। इस दवा के सम्बन्ध में किसी अच्छे वैद्य से पूछ कर देखें, वह क्या कहता है?

वेद का स्वाध्याय करके वेद की शिक्षाओं को अर्जित करें

यहाँ पर अमृतधारा का वर्णन एक प्रसंग मात्र है, एक संयोग ही कह सकते हैं। वास्तव में इस प्रसंग को देने का अभिप्राय: मात्र यह है कि हमारी माताओं के लिए वेद के आदेशों का पालन अक्षरश: करना चाहिए और निरंतर वेद का स्वाध्याय करके वेद की शिक्षाओं को अर्जित करें और फिर वेद की इस उच्चतम शिक्षा को प्राप्त करके इसे निरंतर अपने पास संजो कर रखें तथा जहां भी इस के प्रयोग की आवश्यकता हो, इस का प्रयोग कर जनकल्याण किया जावे।

वेदोक्त ग्रन्थों का निरंतर स्वा-ध्याय से वैदिक उच्च आदर्शों की प्राप्ति वेद प्रायोजित स्त्री शिक्षा का वर्णन करते हुए बताया गया है कि स्त्रियों की शिक्षा के लिए जो उच्च वैदिक आदर्श हैं उन आदर्शों की पूर्ति के लिए वेद तथा वेदोक्त ग्रन्थों का निरंतर स्वाध्याय करना, इनका सदा अध्ययन करने के लिए निर्धारित समय पर इस की शिक्षाओं को ग्रहण करने के लिए सदा प्रयासरत रहना। जितने प्रकार की भी शिल्प विद्याएँ हैं, उन सब को जानना। गृह सम्बन्धी जितने भी शिक्षाएं हैं, जितने भी कार्य हैं, उन सब की शिक्षा प्राप्त करना।

पाकविद्या तो महिलाओं की प्रमुख विद्या है, इसलिए इस विद्या में पूर्णतया पारंगत होना महिलाओं की प्रमुख आवश्यकता है। संगीत विद्या की भी प्रमुख अधिकारिणी महिला ही होती है, इसमें भी उसे अद्वितीय जानकारी होनी चाहिए तथा चिकित्सकीय ज्ञान भी महिलाओं के लिए इसलिए आवश्यक होता है क्योंकि घर में किसी न किसी को कष्ट आया ही रहता है। इस संकट का तत्काल निदान करने के लिए महिलाओं को यह शिक्षा भी लेनी चाहिए। इस के अतिरिक्त भी आवश्यक विद्याओं में महिलाओं को पारंगत होना चाहिए।

समस्या का सामना बड़ी ही सरलता से करने में सक्षम-जब महिलाओं को वेद में निर्देषित इन सब विद्याओं में पारंगतता प्राप्त हो जाती है तो हमारी यह देवियाँ बड़े गर्व से अपना सिर ऊंचा उठाकर चल सकती हैं तथा आने वाली किसी भी समस्या का सामना बड़ी ही सरलता से करने में सक्षम हो जाती है। इससे हमारी यह देवियाँ सदगृहणीयाँ बन जाती हैं, यह सद्माताएं भी बन जाती हैं। जिस प्रकार प्रभु हमारी माता बनकर हमारे सब संकटों को दूर कर हमारा कल्याण करता है, उस प्रकार हमें जन्म देने वाली हमारी यह माताएं भी हमारे सब विकार दूर कर हमें कल्याण के मार्ग पर चलाती हैं। आवश्यकता है तो यह कि हमारी माताएं वेद की पंडित बनकर संसार का कल्याण करने के लिए वेद की सब विद्याओं को प्राप्त करें। ब्रह्मचर्य यदि कोई यह शंका करे कि हमारी इन पुत्रियों के लिए गृहस्थ आवश्यक है ? क्या वह आजीवन ब्रह्मचारी नहीं रह सकतीं ? प्रश्न बहुत ही उत्तम है। इस सम्बन्ध में भी तो हमें कुछ ज्ञान होना ही चाहिए। इस का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है:

आजीवन ब्रह्मचारी-आजीवन ब्रह्मचारी का विषय अपवाद के रूप में होता है क्योंकि आजीवन ब्रह्मचर्य में रहने वाली कन्याएं बहुत कम होती हैं। आजीवन ब्रह्मचारी का अर्थ है, आजीवन ब्रह्म में विचरण करना, आजीवन वैदिक शिक्षा को प्राप्त करने रहना और कुछ न करना। जन कल्याण की भावना इस प्रकार की कन्याओं के लिए प्रमुख होती है। यह कन्याएं आत्म-चिन्तन के स्थान पर जन चिंतन करते हुए जनकल्याण को अपना उद्देश्य बना कर उस उद्देश्य की पूर्ति में ही अपने जीवन को लगा देती हैं। इस प्रकार की कन्याएं आजीवन ब्रह्मचारी की श्रेणी में आती है और अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह निरंतर वेद के अध्ययन और जनकल्याण के कार्य करती रहती हैं।

आजीवन ब्रह्मचर्य का विधान कौन सी देवियों के लिए अब फिर से एक प्रश्न सामने आता है और वह प्रश्न यह है कि आजीवन ब्रह्मचर्य का विधान कौन सी देवियों के लिए किया गया है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा जाता है कि आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का ग्रहण केवल वह ही देवियाँ कर सकती हैं, जिन देवियों ने प्रयत्न पूर्वक वेद तथा वेद से सम्बंधित ग्रंथों का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया हो। सब प्रकार की विद्याओं को जिस देवी ने प्राप्त कर, उन विद्याओं को अपना बना लिया हो। केवल विद्याओं को ही उसने प्राप्त न किया हो अपितु उसमें वैराग्य की पूर्ण भावना भी हो। वह दीन दुनियाँ से ऊपर उठ चुकी हो तथा जिस में किसी प्रकार की आसक्ति न हो, पूर्ण वैरागी हो गयी हो। इस के साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि यह सब विद्या प्राप्त करने के साथ ही साथ वह अपनी इस सम्पूर्ण विद्या को, जो उसने अपने जीवन में अत्यधिक पुरुषार्थ से अर्जित की है तथा अपने शरीर की सम्पूर्ण शक्ति को केवल अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न समझे अपितु वह इसे समाज की संपति समझते हुए, इस का प्रयोग समाज के कल्याण के लिए करे, जन हित में करे, इसे जन-जन को समर्पित कर दे तो ही वह आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की अधिकारी हो सकती है। अन्यथा नहीं।

सम्पादकीय.....

उत्तम स्वास्थ्य ही जीवन है

मनुष्य जीवन का उद्देश्य अपने को सुखमय तथा शक्ति सम्पन्न बनाना है। इस उद्देश्य कर पूर्ति तभी सम्भव हो सकती है जब हमारे शरीर नीरोग तथा सबल हों। मनुष्य का जीवन एक संग्राम भूमि है जिसमें हमें प्रतिदिन सैकड़ों विरोधी शक्तियों से युद्ध करना पड़ता है। अत: इस जीवन संग्राम में वही विजय हो सकता है जो बल और शक्ति से पूर्ण है। वेद में भी मानव प्रार्थना करता है कि- विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम्। अर्थात् मैं सब प्रकार के बलों का स्वामी बनकर सब दिशाओं में विजय प्राप्त करूं। आज संसार शक्ति का उपासक है अर्थात् जिसके पास शक्ति और बल है, संसार के प्राणी उसका ही सम्मान करते हैं। शक्ति सम्पन्न मनुष्य को सताना तो दूर रहा, कोई भी मनुष्य उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देख सकता। इसके विपरीत कमजोर मनुष्य को हर कोई सताता तथा पीड़ा पहुंचाता है। अत: यदि हम अपने जीवन को सुखमय तथा शक्तिसम्पन्न बनाना चाहते हैं और संसार में प्रतिष्ठा और सम्मान से जीना चाहते हैं और इस अमूल्य मानव जीवन को यूं ही न खोकर उसके द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहते हैं तो हमें सबसे पहले अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाना होगा। शरीर के स्वस्थ और बलवान बन जाने पर मन अपने आप ही थोड़े से साधन द्वारा बलवान् तथा दिव्य शक्तियों का केन्द्र बन जाएगा। क्योंकि शरीर और मन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर के सूक्ष्म तत्वों से ही मन बनता है। अत: शरीर के बलवान् होने पर मन में भी उमंग और उत्साह होगा।

शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाने के लिए शरीरशास्त्रियों ने अनेक स्वाभाविक तथा सरल उपायों का आविष्कार किया है। किन्तु मनुष्य उन सरल तथा स्वाभाविक उपायों को छोड़कर कृत्रिम उपायों की ओर ही अधिक अग्रसर हो रहे हैं। यही कारण है कि हम जितना भी कृत्रिम उपायों के द्वारा शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाने का यत्न करते हैं, उतना ही हमारा शरीर निर्वीर्य, निस्तेज, निर्बल तथा रोगग्रस्त होता चला जाता है। शरीर के निर्बल तथा रोगग्रस्त होने के कारण आज हम पूर्णायु को न प्राप्त कर अल्पायु में ही काल के ग्रास बन रहे हैं। हमारे पूर्वज महर्षियों ने स्पष्ट कहा है-शतायुर्वै पुरूष: अर्थात् मनुष्य निश्चय से सौ वर्ष की आयु वाला है। इतना ही नहीं महर्षि मनु ने तो यहां तक लिखा है कि- सतयुग में मनुष्य सर्वथा नीरोग तथा सब प्रकार से पूर्णकाम थे तथा उनकी आयु 400 वर्ष की थी, त्रेता में 300 वर्ष थी, द्वापर में 200 वर्ष थी तथा कलियुग में 100 वर्ष की ही रह गई है। भीष्म पितामह जैसे महापुरूषों का दो-दो सौ वर्ष तक जीना आज हमारे लिए असम्भव घटना हो गई है। अत: दीर्घायु प्राप्त करने के लिए भी अपने शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाना हमारे लिए परम आवश्यक है। आज अन्य सब कामों के लिए हमारे पास समय है परन्तु शरीर को स्वस्थ, बलवान् और नीरोग बनाने के लिए और उसकी देखभाल करने के लिए समय नहीं है। जिस बात पर हमारा ध्यान सबसे पहले जाना चाहिए प्रथम तो उस बात पर हमारा ध्यान जाता ही नहीं और जाता भी है तो तब जब शरीर को नाना प्रकार के रोग और निर्बलताएं आकर घेर लेती हैं। शरीर निस्तेज तथा निर्बल बन जाता है। शरीर की सब मशीनरी अपना काम करना छोड़ देती है। उस समय भी हम अपने शरीर को नीरोग बनाने के लिए दवाओं को खाने और इंजेक्शन लगवाने आदि कृत्रिम साधनों की ओर ही ध्यान देते हैं। स्वाभाविक साधनों की ओर तो हमारा ध्यान जाता ही नहीं। प्रात: काल उठकर सैर करना, प्राणायाम करना, योगासन करना आदि की ओर हम ध्यान नहीं देते। अपनी दिनचर्या को नियमित बनाने का प्रयास नहीं करते, अपने खान-पान की ओर ध्यान नहीं देते जिसके कारण हमारा शरीर रोगों का घर बन जाता है।

हमारे इस शरीर को कृत्रिम साधनों से स्वस्थ बनाने की प्रवृत्ति ने ही नाना प्रकार की दवाओं का आविष्कार किया है। आज जिस प्रकार नाम के धर्मगुरूओं ने धर्म को कमाई का साधन बना रखा है, उसी प्रकार डॉक्टरों ने भी स्वास्थ्य को अपनी कमाई का साधन बना लिया है। हम सब भी दवाईयों के चक्कर में पड़कर अपने स्वास्थ्य को खराब कर देते हैं। इंजेक्शनों आदि के द्वारा शरीर में अस्थाई अर्थात् क्षणिक स्फूर्ति और चेतना को ही हमने शरीर का स्वास्थ्य समझ लिया।

आज बहुत कम ऐसे सौभाग्यशाली मनुष्य होंगे जो शरीर से पूर्ण स्वस्थ हों। कई लोग तो वास्तव में स्वस्थ न होते हुए भी भूल से अपने आपको स्वस्थ समझ लेते हैं। किन्तु वास्तव में शरीर विज्ञान के आचार्यों ने जो स्वस्थ तथा नीरोग मनुष्य के लक्षण बताए हैं, उनके अनुसार ढूंढने से कोई सौभाग्यशाली मनुष्य की स्वस्थ और नीरोग मिलेगा। आयुर्वेद आरोग्यता के निम्न लक्षण बताता है कि-भोजन ग्रहण करने की स्वाभाविक रूचि और अभिलाषा का होना, खाए हुए भोजन का सुखपूर्वक भली प्रकार से पच जाना, मल मूत्र और अपान वायु का विसर्जन नियमपूर्वक भली प्रकार सरलता से हो जाना, शरीर का हमेशा हल्का व फुर्तीला रहना, इन्द्रियों में सदा प्रसन्नता तथा कार्यक्षमता का होना, निद्रा और जागरण दोनों का बिना किसी कष्ट के सुखपूर्वक होना, सोने और जागने में सुख और शान्ति का अनुभव होना, शरीर में बल, पराक्रम और आरोग्यता का होना, मुखादि अंगों का तेजस्वी तथा सुन्दर वर्णयुक्त होना ये स्वस्थ तथा दीर्घ जीवन के लक्षण हैं।

अब हमें विचार करना है कि आरोग्यता के इन लक्षणों के अनुसार क्या हम पूर्ण स्वस्थ और नीरोग हैं? क्या हमारे अन्दर आरोग्यता के उपर्युक्त लक्षण विद्यमान हैं? यदि नहीं तो अपने को पूर्ण स्वस्थ और नीरोग समझ लेना स्वयं को धोखा देना है। आयुर्वेद में वर्णित स्वास्थ्य के लक्षणों के द्वारा ही पूर्ण स्वस्थ और नीरोग बन सकते हैं। बनावटी साधनों के द्वारा हम कुछ समय के लिए आरोग्यता का अनुभव कर सकते हैं परन्तु उसका प्रभाव खत्म होने पर हम पुन: दु:खी होंगे। अत: हमें प्रकृति के स्वाभाविक साधनों से अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् और नीरोग बनाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। जितना हम व्यायाम करेंगे, योग करेंगे, प्राणायाम करेंगे, अपनी दिनचर्या को नियमित करेंगे अर्थात् समय पर सोना, समय पर जागना आदि कार्यों पर ध्यान देंगे तो कोई भी रोग हमारे शरीर को नहीं लग सकता। हमारा असंयमित जीवन ही हमें दु:खों, कष्टों और क्लेशों की ओर ले जाता है। अत: हम अपने जीवन को संयमी बनाकर, आरोग्यता को प्राप्त कर दीर्घायु जीवन को प्राप्त करने का प्रयास करें तभी हम अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रेम भारद्वाज

संपादक एवं सभा महामन्त्री

वेदों का प्रचार प्रसार और हमारा दायित्व

-डॉ. सुशील वर्मा फाजिल्लका

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता का भव्य प्रसाद वेदों की सुदृढ आधार-शिला पर ही निर्मित हुआ है। प्राचीन काल से ही दर्शन, सदाचार आदि में विभिन्न मत मतान्तर प्रचलित रहे। परन्तु सभी ने अपने मत का आधार वेदों को ही माना है। आचार्यों, ऋषि, मुनियों ने अपने मतों की पुष्टि वेद मन्त्रों के आधार पर ही की। वेद शब्द का अर्थ है-ज्ञान का संग्रह ग्रन्थ।

भारतीय परम्पराओं के अनुसार वेदों को ईश्वर ज्ञान माना जाता है। वैदिक ज्ञान नित्य एवं शाश्वत है। सृष्टि की रचना के आदि में ईश्वर ने वैदिक ज्ञान प्रकट किया। यह ज्ञान अनादि और अपौरुषेय है जो प्रलय के बाद भी बना रहता है। ''प्रलय काल में संसार में वेद नहीं रहते परन्तु उसके ज्ञान के भीतर सदा बने रहते हैं जैसे बीज में अंकुर प्रथम ही रहता है, वही वृक्षरूप ही थे फिर भी बीज के भीतर रहता है इसी प्रकार वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहते हैं। (ऋग्वेदा-दिभाष्य भूमिका)

महर्षि दयानन्द के अनुसार वेद अपौरुषेय है, ईश्वर कृति है। जिसका ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर ने मानव कल्याण के लिए ऋषियों के हृदय में प्रकाशित किए। सृष्टि की रचना 1,96,08,53,118 वर्ष हुई, ईश्वरीय ज्ञान के वेद भी उतने ही प्राचीन है। क्योंकि यह ज्ञान का प्रकाश सृष्टि के आदि में होता है अतः उसमें इतिहास नहीं हो सकता। उसके विपरीत बाइबल में पैलस्टाइन के यहूदियों का इतिहास हैं, इसी प्रकार कुरान, अरब देशों के दृश्यों तथा आदम, ईसा, मूसा, दाऊद के किस्सों से भरा पड़ा है। केवल मात्र वेद ही ऐसी पुस्तक है जिसमें किसी देश काल तथा जाति का इतिहास नहीं है। यह सत्य है कि वेद में विश्वामित्र, वशिष्ट, कश्यप, उर्वशी आदि शब्द आए है जो कि व्यक्ति विशेष के सूचक नहीं अपितु सामान्य गुण सूचक है। यह ज्ञातव्य है कि विशेषण के साथ ही 'तर' और 'तम' प्रत्यय लग सकते हैं, संज्ञा के साथ नहीं। उदाहरण स्वरूप कण्वतम (ऋग् 1/48/4) तथा इन्द्रतम (ऋग् 1/182/2) यदि ये शब्द संज्ञा वाचक होते तो 'तम' प्रत्यय लग ही नहीं सकता।

''त्र्यायुषं जमदग्ने, कश्यपस्य त्र्यायुषम्'' (यजु 3/62)

यहाँ चक्ष का नाम जमदग्नि और प्राण का नाम कश्यप है। (शतपथ ब्रॉ.) इसी प्रकार यजु. 13/54 में वसिष्ट का अर्थ प्राण है ''प्राणो वै वसिष्ट ऋषिः (शतपथ 8/1/6) वहीं वसिष्ट शब्द जल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है (ऋग् 7/33/11)

ईश्वरीय ज्ञान तो है ही बुद्धि के लिए, अतः बुद्धि एवं सृष्टि नियम में अनुकूलता आवश्यक है। वेद का ज्ञान सृष्टि नियमानुसार है वहीं बाइबल में तो प्रतिकूलता ही पाई जाती है। गैलेलियो जैसे वैज्ञानिक को दस वर्ष की कठोर सजा हुई और जेल में ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका मात्र इतना दोष था कि उसके कथानुसार पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर घूम रही है जब कि बाइबल कहती है कि पृथ्वी चपटी है और स्थिर है, सूर्य ही घूमता है। हियोफिया रेखागणित का प्रचार एवं अविष्कार कर रही थी। इसी बात के लिए उसे जान से मार दिया गया था क्योंकि बाइबल में रेखागणित की चर्चा ही नहीं है। कुरान में भी लिखा है ''अल्लाह वह है जिसने खड़ा किया आसमानों को बिना खम्बे के, देखते हो तुम उसको। फिर ठहरा उपर अर्श के आज्ञ बर्त्तने वाला किया सूरज और चान्द को। और वहीं से जिसने बिछाया पृथ्वी को उतारो आसमान से पानी, बस बहे नाले साथ अन्दाज के अपने के (मं. 2, सि. 13 सू. 13 आ 2, 3, 17, 26)

परन्तु वेद में सृष्टि नियमों के प्रतिकूल एक भी बात नहीं।

कणाद कहते है ''बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'' (वैशेषिक 6/1/1)

वेद की मान्यता है कि भूमि सूर्य के चारों ओर घूमती है (यजु 3/6)

''आयं गौ पृश्निरक्रमीद-सदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः।।

वहीं पृथ्वी की दो गतियों का भी उल्लेख है (अथर्व 12/1/52)

वेद स्वयं ईश्वरीय ज्ञान होने की घोषणा करता है।

तस्माद् यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दासि जज्ञिरे, तस्माद् यजुस्त-स्मादजायत।। यजु 31/7

महर्षि कणाद वेद को स्वतः प्रमाण मारते हैं-'तद्वचनाद् आम्नायस्य'' (वै. 1/1/3)

वहीं महर्षि कपिल सांख्य दर्शन (5/51) कहते हैं

''परमेश्वर की अपनी शक्ति से उत्पन्न होने के कारण वेद स्वतः प्रमाण हैं।'' निजशक्त्यभिव्यकतेः स्वतः प्रामाण्यम्''

वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है, परन्तु बाइबल का घात अर्थ ''पुस्तकों का संग्रह'', वहीं कुरान तो स्वयं घोषणा करता है।

आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु (मं सि सू)

परमात्मा द्वारा प्रदत्त ज्ञान पूर्ण होना चाहिए। समय-समय पर ज्ञान प्रकट करने का अर्थ है कि आदि सृष्टि में ज्ञान जो दिया गया था, उसमें कमी रह गई है जिसकी पूर्ति बाद में की गई। अर्थात् परमात्मा सर्वज्ञ तो न हुआ। अपने कार्य में सुधार की सम्भावना तो अल्पज्ञ की होती है। उसका ज्ञान तो अपरिवर्तनशील है।

''पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'' (अथर्व 10/8/32)

निष्कर्ष यही कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद में सभी सत्य विद्याओं का उल्लेख बीज रूप में है। वेद एकेश्वरवाद प्रतिपादित करता है परन्तु हमारे ही पौराणिक भाईयों ने तो सृष्टि रचना,. पालन और संहार के लिए तीन देवताओ ब्रह्मा विष्णु महेश को खड़ा कर दिया जब कि वह एक ही परम पिता परमात्मा-इन्हीं कार्यो का एकमेव अधिष्ठाता है इसीलिए तो वह God है, Generator भी वही, Operator भी वही, तो Destructor भी वही, अर्थात् रचनाकार पालनकर्त्ता एवं संहार कर्त्ता। अपने गुण कर्म स्वभाव के कारण उसके अलग-अलग नाम है ''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति''

वेद में न तो मूर्ति पूजा है, न जड़ पूजा, न ही अवतारवाद न ही जीव ब्रह्म की एकता, न जादू टोना, न पाखण्ड मण्डित धारणा, न ही वशीकरण, न ही हिंसात्मक यज्ञों का विधान वेद में तो सुन्दर वर्ण व्यवस्था ''ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद'' (ऋग् 10/90/12) आर्थिक व्यवस्था ''देहि में ददामि ते (यजु 3/50)

राष्ट्रियता ''वयं तुभ्यं बलिह्यत स्याम'' (अथर्व 12/1/62)

आचार संहिता ''अनुव्रतः पितुः पुत्रो'' (अथर्व. 3/30/2) का विवेचन है वही वेदों में वैज्ञानिक तत्त्वों का भण्डार है जो कि आज वैज्ञानिकों द्वारा प्रमाणित हो रहे हैं।

सूर्य न उदय होता है न अस्त। (ऐत. ब्रा. 3/44)

पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है। (ऋग 10/22/14)

पृथ्वी अन्तरिक्ष माँ के सामने रहती है, पिता रूपी सूर्य की परिक्रमा करती है। (यजु 3/6)

चन्द्रमा सूर्य की रोशनी से प्रकाशित होता है (यजु 18/40)

सूर्य संसार की आत्मा है। (ऋग् 1/115/1; यजु 7/42)

इसी प्रकार सूर्य की ऊर्जा का आधार सोम अथवा Hydrozan यजुर्वेद में हाइड्रोजन के लिए ''अपां

(शेष पृष्ठ 7 पर)

आर्यों का मूल निवास स्थान

-ले० शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

आर्य लोग जिन्होंने वैदिक संस्कृति को जन्म दिया वे किस देश के मूल निवासी थे ? यह प्रश्न सर्वप्रथम सन् 1786 ई. में फिलिप्यो सेसेटी ने उठाया था। इसके पूर्व ईसा से चौथी शताब्दी पूर्व सिकन्दर के आक्रमण के बाद भारत में आये मेगस्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन में सेल्यूकस निकोटार के राजदूत के रूप में रह कर भारत में दूर-दूर तक की यात्रा की थी। उसने उन यात्राओं का वर्णन भी लिखा जो अब अनुपलब्ध है परन्तु उसमें से कुछ अंश कई अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। मेगस्थनीज ने लिखा था कि भारतीयों का कभी किसी विदेशी से युद्ध नहीं हुआ था और न ही किसी विदेशी शासक ने यहाँ आक्रमण किया था। भारतीय लोग अपने को इसी देश का निवासी मानते थे तथा किसी भी अन्य देश से अपना सम्बन्ध नहीं बताते थे। उसके बाद यूनान से प्लिनी और टोलोमी भी आये उन्होंने भी इस प्रश्न को नहीं उठाया कि आर्य लोग भारत में कहां से आये थे ? फिर सातवीं शताब्दी में हर्ष वर्धन के समय चीन से ह्वेनसांग भारत आया वह सन् 629 ई. में भारत आया था और सन् 645 ई. में चीन लौट गया। उसने चीन में जाकर अपनी यात्रा का वर्णन लिखा। वह भारत की आर्थिक स्थिति से अधिक प्रभावित था। उसके अनुसार भारतीयों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा था। सोना और चाँदी के सिक्कों का प्रचलन था। रेशमी, सूती ऊनी, कपड़ा बनाने का व्यवसाय उन्नत था। शिक्षा की व्यवस्था अच्छी थी। शैक्षणिक स्तर ऊंचा था। परन्तु उसने भारतीयों के किसी अन्य देश से भारत में आने की बात नहीं लिखी।

अरब देश से अलबेरूनी आया था। उसने देश की लम्बी यात्रा की। विजयनगर साम्राज्य के ऐश्वर्य से वह बहुत प्रभावित भी हुआ। उसने भी अपनी यात्रा का वर्णन लिखा परन्तु उसने इस प्रश्न को नहीं उठाया कि भारतीय लोग इस देश में कहीं बाहर से आये थे। यह प्रश्न तो सन् 1786 ई. में ही उठाया गया। फिलिप्यो सेसेटी यूरोप का निवासी था तथा व्यापार के सिलसिले में 5 वर्ष तक गोवा में रहा था। गोवा में रहते हुए पहले उसने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। इसके बाद फिर उसने संस्कृत भाषा तथा यूरोप की अन्य भाषाओं के शब्दों में समानता को देखकर यह विचार बनाया कि आर्य लोग प्रारम्भ में यूरोप के निवासी थे। उसकी इस धारणा को शक्ति प्रदान करने वाला बंगाल का मुख्य न्यायाधीश विलियम जोन्स बना। उसने सन् 1786 ई. में ही एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के समक्ष इस आशय का एक पत्र पढा और इस धारणा के संबंध में निम्न तर्क प्रस्तुत किये-

(1) आज की इन्डो- यूरोपयिन भाषा परिवार के शब्द और मुहावरे जितने यूरोप की भाषाओं में विद्यमान हैं उतने एशिया की भाषाओं में नहीं है। उदाहरणार्थ 'द्यौ' शब्द संस्कृत का है परन्तु यह यूरोप की विभिन्न भाषाओं में विद्यमान है-लैटिन में 'दुआ' आइरिश में 'दो' लिथूनियन में 'दु' तथा अंग्रेजी में 'टू' इससे सिद्ध होता है कि संभवत: यूरोप का कोई भाग आर्यो का आदि देश रहा होगा।

(2) यूरोप की लिथूनियन भाषा ही समस्त इण्डो-यूरोपियन भाषा परिवार में अत्याधिक परिष्कृत है और इसी कारण वह प्राचीनतम प्रतीत होती है अत: आर्यो का मूल निवास स्थान लिथूनिया या उसके आस-पास का प्रदेश रहा होगा।

प्रश्न उपस्थित हुआ कि वह मूल प्रदेश कौन सा है ?

इस पर कहा गया कि हंगरी जर्मनी अथवा दक्षिणीरूस वह प्रदेश हो सकता है।

प्रो. गाइल्स ने हंगरी को आर्यों का मूल निवास स्थान माना। उन्होंने अपने पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किये-

(1) आर्यों को जिन वृक्षों का ज्ञान था वे शीतोष्ण कटिबन्ध में होते हैं।

(2) आर्यों को हाथी, गधे और खच्चर का ज्ञान नहीं था। वे लोग बैल, गाय, भैड़, बकरी, घोड़ा आदि पालते थे। पक्षियों में उन्हें बतख और गिद्ध का ज्ञान था। इन सब पशु-पक्षियों के लिए उपयुक्त स्थान कारथेनियन पर्वतमाला के समीप का प्रदेश ही उचित लगता है।

(3) आर्य लोग मूल रूप में गेहूं और जौ का प्रयोग करते थे। वे खाद्यान्न भी हंगरी के उपजाऊ मैदानों में पैदा किये जाते हैं।

प्रो. गाइल्स केवल भौगोलिक परिस्थिति के आधार पर ही हंगरी को आर्यों का मूल निवास स्थान बताता हैं। यह धारणा सर्व मान्य नहीं है इसमें केवल कल्पना का ही सहारा लिया गया है। यह भी आवश्यक नहीं है कि हंगरी की जलवायु उस काल में भी ऐसी ही थी।

पेन्का ने विचार रखा कि आर्यों की जन्म भूमि जर्मनी है। उन्होंने नस्ल और शारीरिक गठन को इसका आधार माना। उसने अपनी धारणा में निम्न तर्क प्रस्तुत किये-

(1) आर्यों की प्रथम जातीय व्यवस्था यह थी कि उनके बाल भूरे थे। फ्लूटार्क एवं सुला के बाल भी भूरे थे। यह व्यवस्था आज भी मिलती है।

(2) जर्मनी के कुछ भागों में हुई खुदाई में मिट्टी के भाण्डे मिले हैं जो आर्यों की ही कृति होनी चाहिए।

(3) ये विशेषताएं स्केन्डेनि-वियन्स में भी पाई जाती हैं इसलिए पेन्का के समर्थन में हर्ट ने भी इसे आर्यों का मूल निवास स्थान माना है।

(4) कुछ इतिहासकारों जे पुरातत्व के आधार पर बाल्टिक समुद्रतट को आर्यो का मूल निवास स्थान माना है।

मीमांसा-शरीर रचना अथवा बालों के रंग के आधार पर जर्मनी अथवा बाल्टिक समुद्रतट को आर्यो का मूल निवास स्थान नहीं माना जा सकता है। पातंजलि ने भूरे बालों का होना ब्राह्मणों का स्वाभाविक गुण माना है। रोम में भूरे बालों का होना एक कौतुक का विषय माना जाता है। इसलिए वहां विद्वानों का ध्यान फ्लूटार्क और सूला पर गया। इसी तरह पाषाण कालीन सामग्री अथवा एक दो मृद भाण्ड मिल जाना ही आर्यो का मूल निवास स्थान नहीं बना सकता है।

नेहरिंग, बेन्डेस्टीन तथा गार्डन चाइल्ड ने मत रखा कि दक्षिणीरूस आर्यो का मूल निवास स्थान है। उनके तर्क है-

(1) यूकाराइन में 3000 बी. सी. के कुछ भाण्ड मिले हैं। नेहरिंग के अनुसार वे आर्यो की ही कृति हैं।

(2) आर्यों का मूल निवास स्थान उनके वनस्पति और पशु-पक्षियों के ज्ञान के आधार पर शीतोष्ण कटि बन्द बताया जाता है इसलिए आर्य दक्षिणी रूस के ही निवासी रहे हैं क्योंक यह स्थान शीतोष्ण कटि बन्ध में ही है।

मीमांसा-नेहरिंग और गार्डन द्वारा प्रतिपादित दक्षिणी रूस का सिद्धांत भी न्याय संगत प्रतीत नहीं होता है। प्रथम तो स्टेप्स में वे भौगोलिक परिस्थितियां उपलब्ध नहीं है जो आर्यों के लिए आवश्यक बताई गई हैं चाहे स्टेप्स शीतोष्ण कटिबन्ध में ही क्यों न हो। दूसरे भाषा विज्ञान के आधार पर स्टेप्स आर्यों का मूल निवास स्थान नहीं हो सकता। इन्हीं कारणों से प्रो. गाइल्स ने इस धारणा का विरोध किया है। वास्तव में यूरोप को आर्यो का मूल निवास मानने में उनकी यूरोपीय भावना ही मुख्य है।

मध्य एशिया-आर्यों का मूल निवास स्थान मध्य एशिया था, इस मत का प्रतिपादन सर्व प्रथम सन् 1820 ई. में जे. जे. रहोड ने किया फिर सन् 1859 ई. में इस मत का समर्थन मैक्स मूलर ने किया। एडवर्ड मेयर ने इस धारणा का समर्थन करते हुए पामीर के पठार को आर्यों का मूल निवास स्थान बताया। कीथ ने भी इस मत का समर्थन किया।

भारतीय विद्वानों में यदुनाथ सरकार तथा द्वारका प्रसाद मिश्र ने भी इस धारणा को स्वीकार कर लिया। इस धारणा के संबंध में निम्न तर्क प्रस्तुत किये गये-

(1) मैक्स मूलर ने कहा कि आर्य संस्कृति का बोध वेद तथा

(क्रमशः)

महर्षि सत्यार्थ प्रकाश और मैं

-ले० अभिमन्यु कुमार खुल्लर 22, नगर निगम स्वार्टर्स, जीवाजीगंज, लश्कर, ग्वालियर-474001 (म. प्र.)

विश्व-रत्न, विश्व-वंद्य महर्षि दयानन्द कृत 'सत्यार्थ-प्रकाश' के भावार्थों को समझना और आत्मसात करना जब पं. गुरुदत्त विद्यार्थी के लिये भी टेढ़ी खीर था तब सामान्य बुद्धि के वैदिक-धर्मी, आर्यसमाजी के लिये कितना दुर्बोध्य होगा, अनुमान लगाया जा सकता है। पं. गुरुदत्त ने स्वामी श्रद्धानन्द से तब कहा था, जब वह स्वामी श्रद्धानन्द नहीं हुए थे-मुशीराम ! सत्यार्थ-प्रकाश का 17 बार अध्ययन करने के पश्चात् भी, जब-जब सत्यार्थ-प्रकाश का आलोड़न करता हूं, तब-तब मुझे नए-नए अर्थ उद्भासित होते हैं। इस प्रसंग में विद्वान लोग इससे अधिक कुछ नहीं बताते। किन प्रसंगों के सम्बन्ध में नए भाव, नए विचार पं. गुरुदत्त के मस्तिष्क में उद्भासित होते थे, उसकी चर्चा कभी नहीं सुनी और नहीं कोई लेख दृष्टिगोचर हुआ। सत्यार्थ-प्रकाश की संस्कृत व्याख्या के अध्ययन के परिणामस्वरूप ही वह महर्षि के अन्त स्थल की भावधारा में गोता लगा पाए। पं. लेखराम ने पृष्ठ 913 में इसकी पुष्टि की है। महर्षि के वैदूष्य ने इसी कारण उन्हें अचम्भित कर दिया था। सम्भवत: पं. गुरुदत्त ही कभी बताते लेकिन 25 वर्ष की अल्पायु में ही उनका स्वर्गवास हो गया।

सत्यार्थ-प्रकाश को ज्ञान-विज्ञान का अनुपम आगार, मानव-कल्याण की विश्व जनीन भावना से ओतप्रोत, भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति की चेष्टा को मुखरित करने वाला आधार स्तम्भ, समस्त सामाजिक कुरीतियों, बुराईयों को उन्मूलन करने वाला शंखनाद आदि मानने वाले पं. गुरुदत्त विद्यार्थी का यह कथन हमारा प्रेरणा-स्त्रोत होना चाहिए और हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए-यदि सत्यार्थ-प्रकाश की एक प्रति का मूल्य एक हजार रुपये भी होता तो मैं उसे सारी सम्पत्ति बेचकर खरीदता।' 150 वर्ष पूर्व सत्यार्थ-प्रकाश का मूल्य पांच रूपये था और वह उसे सारी सम्पत्ति बेच कर भी खरीदने को समद्युत थे।

सत्यार्थ प्रकाश के मर्म को समझने-समझाने का दादित्व विद्वानों का है और वे दायित्व का निर्वाह कर भी रहे हैं। स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी ने 'सत्यार्थ-भास्कर' नाम से दो हजार से भी अधिक पृष्ठों में सत्यार्थ-प्रकाश की व्याख्या लिखी है। यह अद्वितीय ग्रन्थ है।'

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी से लेख का प्रारम्भ इसलिये किया था कि सम्पूर्णरूप में सत्यार्थ प्रकाश को समझना व आत्मसात करना बहुत टेढ़ी खीर है। पहिले पं. गुरुदत्त ने अजमेर जा कर, मृत्यु शैया पर आसीन विष की दारुण पीड़ा को अत्यधिक धैर्य व शान्ति से सहन करते हुए महर्षि दयानन्द का अत्यन्त सूक्ष्मता से, गहराई से अवलोकन किया। ईश्वर-विश्वासी योगी के स्वर्गारोहण ने, ईश्वर के अस्तित्व को लेकर द्विविधाग्रस्त पं. गुरूदत्त को सर्वप्रथम ईश्वर विश्वासी बनाया फिर सत्यार्थ-प्रकाश का गूढ़ अध्येता-दीवाना बना दिया।

वेद को अपौरुषेय (परमात्मा द्वारा प्रदत्त ज्ञान) मानने वाले महर्षि दयानन्द, वेद ज्ञान को समस्त मानवता की निधि मान कर ही उसकी व्याख्या प्रवचनों में, शास्त्रार्थों में और ग्रन्थों के प्रणयन में करते थे। इसीलिये मेरी दृष्टि में, मानव-निर्माण की 'सत्यार्थ प्रकाश' और संस्कार विधि में वर्णित वैदिक व्यवस्था केवल भारत के लिये ही नहीं है, वह विश्व के समस्त मानव समुदाय के लिये, समान रूप से उपयोगी है, आवश्यक है। उसके अन्तर्गत ऐसे श्रेष्ठ मानसिक और शारीरिक शक्तियों से सम्पन्न सबल, उज्जवल, निष्कलंक, चरित्रवान, सकारात्मक सोच वाले व्यक्तियों के निर्माण की व्यवस्था है जो विश्व में व्याप्त अंशाति के कारणों को, चाहे वे धर्म-पंथ आधारित हों, राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये हों, सर्वांग रूप में समाप्त कर विश्व में शान्ति और सौमनस्य निर्माण करने में सफल हों। यह उल्लेख काल्पनिक नहीं है। वैदिक युगीन भारतीय सम्राट यह कर चुके हैं। इस मानव निर्माण प्रक्रिया का उल्लेख यथा स्थान किया जावेगा। भारत उसके लिये रोल मॉडल बन सकता है।

इस दृष्टि के अनुरूप सर्वप्रथम भारत का नवनिर्माण महर्षि को अभीष्ट था क्योंकि दासता की जंजीरों में जकड़ा भारत, अपनी अस्मिता ही खो बैठा था। अशिक्षा, कुसंस्कारों, अन्धविश्वासों में आकण्ठ डूबे हुए भारत में, असंख्य देवी-देवताओं की पूजा-पद्धति प्रचलित थी।

महर्षि का अनुभव जन्य सुविचारित अभिमत था कि वेदोक्त, ईश्वर की स्थापना के बिना, अज्ञान, अन्धकार में आकण्ठ डूबे हुए भारत के कल्याण का श्रीगणेश भी नहीं किया जा सकता, इसीलिए प्रथम समुल्लास (आनन्द) में ईश्वर के सौ नामों की व्याख्या सी है। प्राय: इन्हीं सौ नामों से सम्पूर्ण भारत में ईश्वरोपासना होती है।

महर्षि ने पहिले सिद्ध किया कि ईश्वर का निज नाम ओ३म् है।

नोट-14 अप्रैल 2017 के टाइम्स ऑफ इन्डिया, गवालियर संस्करण में प्रकाशित समाचार के अनुसार विश्व विख्यात उस्ताद फैयाज वासिफ उद्दीन डागर ने कहा कि शास्त्रीय संगीत सर्वत्र व्याप्त है और मेरे लिये सब कुछ है। हमारा शरीर प्राकृतिक वाद्य यंत्र है और विश्व की समस्त ध्वनियों और स्वरों का मेल 'ओ३म्' में समाहित है। वे ध्रुपद गायन की बीसवीं पीढ़ी के गायक हैं। ध्रुपद का शुद्ध रूप ध्रुवपद है और उत्पत्ति सामवेद है। कन्याकुमारी स्थित स्वामी विवेकानन्द के ध्यान केन्द्र में 'ओ३म्' ध्वनि गुंजारित होती रहती है।

ईश्वर का निज नाम ओ३म है, शेष नाम, नाम नहीं उसके गुण हैं, विशेषण हैं। ये विशेषण पृथक-पृथक देवताओं की या अनेक ईश्वर की सिद्धि नहीं करते। संस्कृत की जिन धातुओं से इन शब्दों की उत्पत्ति हुई है, उनका उल्लेख करते हुए महर्षि अंकित करते हैं-

1. सम्पूर्ण जगत को रच कर बढ़ाता है, इसलिये परमेश्वर का नाम 'ब्रह्मा' है।

2. चर और अचररूप जगत में व्यापक होने से परमात्मा का नाम 'विष्णु' है।

3. सब चराचर जगत को देखता, चिन्हित करता अर्थात् दृश्य बनाना, जैसे शरीर के नेत्र, नासिका, और वृक्ष के पत्र, पुष्प फल-मूल, जल रक्त के लाल-श्वेत कण, मृत्तिका, पाषाण, चन्द्र, सूर्यादि चिन्ह बनाता तथा सबको देखता, सब शोभाओं की शोभा, और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है। उससे उस परमेश्वर का नाम 'लक्ष्मी' है।

4. उत्पत्ति और प्रलय से 'शेष' अर्थात् बच रहता है, इसलिये उस परमात्मा का नाम 'शेष' है।

टिप्पणी-इस प्रकार क्षीर सागर में शेष (नाग) शायी लक्ष्मीपति, विष्णु को ईश्वर मान कर पूजन करने का अर्थ 'शून्य' हो जाता है।

5. महान देवों का देव, अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है, इसलिये उस परमात्मा का नाम 'महादेव' है।

6. कल्याणस्वरूप और कल्याण करने वाला है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'शिव' है।

7. कल्याण अर्थात् सुख का करने वाला है, इससे उसे परमेश्वर का नाम 'शंकर' है।

8. जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव, प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करने वाला है, उससे उस ईश्वर का नाम 'गणेश' वा 'गणपति' है।

टिप्पणी-महादेव, शिव और शंकर एक ही हैं और कल्याण सूचक विशेषण हैं। महादेव को मृगमाला धारी, गले में सांप, जटा-जूट, चन्द्रमा का तिलक, त्रिशूलधारी पार्वती पति दिखाया जाता है। जिसने अपने ही पुत्र गणेश का सिर काट दिया। कटे हुए सिर के स्थान पर हाथी का सूंढ़ सहित लगा दिया गया।

गणपति की पूजा इसी रूप में प्रचलित हो गई और आज भी जोर-शोर से होती है।

शिव के साथ तो और भी ज्यादा अत्याचार हुआ। वाममणियों

(क्रमश:)

पृष्ठ 4 का शेष-वेदों का प्रचार प्रसार और हमारा दायित्व

रस:'' और हीलियम के लिए ''अपां रसस्य यो रस:'' आदि शब्द है (यजु. 9/3)

इसी प्रकार विद्युत प्रवाह Electro magnetic, और ऊर्जा, अरणि मन्थन से अग्नि, जल मन्थन से अग्नि, Hydro Electric, भूगर्भीय अग्नि (Oil & Natural gases) हाइड्रोजन एवं आक्सीजन से जल प्राप्ति, पर्यावरण संघटक तत्त्व जल, वायु, औषधियाँ, जल को प्रदूषण से बचाना, वृक्षों को बचाना, वृक्षों का पति शिव, जल चिकित्सा, भूगर्भ में अग्नि Radioachivity आदि अनेक सूत्र सम्बन्धित ज्ञान वेदों में वर्णित है।

उक्त तथ्यों पर आधारित यह प्रमाणित है कि ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।'' महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वरचित ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में वेदों में ब्रह्म विद्या सृष्टि विद्या, विज्ञान काण्ड, पृथिव्यादिलोक भ्रमण विषय, आकर्षणनुकर्षण, गणित विद्या, नौविमानादि विद्या, राजधर्म, प्रजाधर्म मुक्ति, वर्णाश्रम, पञ्चमहायज्ञ आदि विषयों का वर्णन किया है उक्त धारणा को स्थापित करने का श्रेय उन्हीं को है।

जहाँ तक धर्म का सम्बन्ध है, वैशेषिक सूत्र का उद्घोष है ''यतोऽभ्युदयनि: श्रेयससिद्धि: स धर्म'' (वै. 1/1/2) अर्थात् जिससे अभ्युदय और नि:श्रेयस की सिद्धि होती है, वह धर्म है यह तथ्य वेदों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उसी सन्दर्भ में मनुस्मृति (2/6) कहती है ''वेदोऽखिलो धर्म मूलम्'' धर्म शब्द धृञ्-धारणे से उत्पन्न होता है अर्थात् जो धारण किया जाए वह धर्म है 'सत्य ईश्वरीय नियम' अथवा तो सत्य सिद्धान्त को जीवन में धारण करने का नाम ही धर्म है वेद का आदेश है कि वेदोक्त धर्म का सदा पालन भरो, कभी उसके विपरीत आचरण न करो।

''संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि'' अथर्व. 1/1/4.

मानव जीवन का लक्ष्य लौकिक और पारलौकिक सुख की प्राप्ति है। वेद उदात्त स्वर में कह रहा है ''नान्य: पन्था विद्यते-ऽयनाय'' (यजु 31/18) ईश्वर प्रदत्त ज्ञान द्वारा अध्ययन कर तदनुकूल आचरण कर मोक्ष प्राप्ति का साधन बनाया जाए। उसी तथ्य को आधार मानकर महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज का तीसरा नियम प्रतिपादित किया।

''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है''

आओं हम सभी सत्य विद्या को धारण करे, उस पर आचरण करें। परमात्मा हमें वेद मार्ग पर चलने की शक्ति दे सामर्थ्य दे।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/-रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/-रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें।आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

आर्य समाज दीनानगर की गतिविधियां

आर्य समाज दीनानगर एक ऐसी आर्य समाज है जिसने समय समय पर समाज में फैल रही कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई है। जिला गुरदासपुर में दीनानगर आर्य समाज में दैनिक यज्ञ प्रतिदिन होता है। इसके साथ-साथ रविवारीय सत्संग प्रति रविवार को बहुत ही अच्छे ढंग से होता है। प्रत्येक रविवार को दयानन्द मठ के अध्यक्ष स्वामी सदानन्द जी के आशीर्वाद से आर्य समाज में नया वक्ता ही उपदेश देने के लिए पहुँचता है। इस प्रकार साप्ताहिक , सत्संग में बहुत ही अच्छी रौनक होती है। इसके साथ-साथ स्त्री आर्य समाज की ओर से महीने के आखिरी रविवार को स्त्री समाज का आयोजन किया जाता है। आर्य समाज दीनानगर की ओर से वर्ष में दो बार वेद प्रचार सप्ताह मनाया जाता है। दीपावली पर्व पर ऋषि दयानन्द बलिदान उत्सव के उपलक्ष्य में पूरा सप्ताह आर्य शिक्षण संस्थाओं में विद्वानों के उपदेश करवाए जाते हैं। आर्य समाज स्थापना दिवस हो चाहे स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस हो। सभी उत्सव बड़े ही धूमधाम से मनाए जाते हैं इस प्रकार सभी कार्यकर्त्ता बहुत ही लगन से कार्य कर रहे हैं। श्री रघुनाथ सिंह शास्त्री जी के नेतृत्व में यह समान बहुत ही उन्नति कर रही हैं।

-रमेश महाजन मन्त्री आर्य समाज दीनानगर

पुरोहित की आवश्यकता

आर्य समाज श्री गंगानगर राजस्थान में एक सुयोग्य पुरोहित की आवश्यकता है। दक्षिणा योग्यतानुसार दी जाएगी। इच्छुक महानुभाव पुरोहित के कार्य हेतु सम्पर्क करें। आवास की सुन्दर व्यवस्था आर्य समाज की ओर से रहेगी।

सम्पर्क-: प्रधान- 9828240717
मन्त्री- 9785772878

प्रवेश प्रारम्भ

पूज्य स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक द्वारा स्थापित वानप्रस्थ साधक आश्रम रोजड़ गुजरात के संस्कृत व्याकरण, उपनिषद एवं दर्शन अध्यापन केन्द्र में ब्रह्मचारियों को प्रवेश दिया जा रहा है। यहाँ पिछले पाँच वर्षों से संस्कृत, व्याकरण का अध्ययन-अध्यापन चल रहा है। वर्तमान में आचार्य श्री शक्तिनन्दन जी के द्वारा अष्टाध्यायी, प्रथमावृत्ति तथा धातुवृत्ति का अध्यापन किया जा रहा है। अष्टाध्यायी के साथ संस्कृत भाषा का प्रशिक्षण भी दिया जाएगा। इसके साथ प्रतिदिन संध्या, हवन, आत्मनिरीक्षण व समय-समय पर अनेक विद्वानों के दार्शनिक-आध्यात्मिक प्रवचन एवं योगनिष्ठ गुरुवर्य पूज्य स्वामी सत्यपति जी का सानिध्य, प्रेरणा व उपदेश भी प्राप्त होता रहता है। आश्रम फल- फूल, वृक्षों से युक्त रमणीय वातावरण से परिपूर्ण शान्त एकान्त में स्थित है। बिना किसी पक्षपात के आवास, भोजन, वस्त्र, पुस्तक आदि समस्त साधन पूर्णत: नि:शुल्क उपलब्ध कराए जाते हैं।

कुछ काल के लिए ब्रह्मचारियों का परीक्षण किया जाता है। गुरुकुलीय दिनचर्या, पूर्ण अनुशासन, योगाभ्यास व अध्यात्म में रूचि रखने वाले ब्रह्मचारी ही प्रवेश के लिए निम्न पते पर सम्पर्क करें। स्थान सीमित है।

-व्यवस्थापक वानप्रस्थ साधक आश्रम
आर्यवन रोजड़ गुजरात

वेदवाणी

संसार में सब मनुष्य समान हैं

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः।।
-ऋ० ५।६०।५

*ऋषिः-**श्यावाश्व आत्रेयः**।। देवता-**मरुतो वाग्निश्च**।। छन्दः-**निचृत्त्रिष्टुप्**।।*

***विनय**-संसार-भर के सब मनुष्य (मरुत) परस्पर भाई-भाई हैं। मनुष्यमात्र एक ही माता-पिता के पुत्र हैं। संसार के किसी देश के एक कोने में रहने वाले मनुष्य के उसी तरह पिता "रुद्र" = परमेश्वर है और माता "पृश्नि" = प्रकृति है जैसे किसी दूसरे कोने में रहने वाले के। मनुष्य होने की दृष्टि से इनमें न कोई बड़ा है और न छोटा है। काले-गोरे, हब्शी और सभ्य, पूँजीपति और श्रमी, पौर्वात्य और पाश्चात्य, ब्राह्मण और अछूत, हिन्दू और मुसलमान, जापानी या अमेरिकन, अंग्रेज़ या हिन्दुस्तानी, नागरिक व देहाती, सब-के-सब एक-समान परस्पर मनुष्य-भाई हैं। इनमें ऊँच-नीच मानना अज्ञान है। मनुष्य की दृष्टि से छोटा-बड़ा मानना अनुचित है। संसार-भर के मनुष्यों को "मंरुत् देवो" की तरह, उत्तम कल्याण के लिए मिलकर यत्न करना चाहिए, मिलकर संसार में मनुष्यता की उन्नति करनी चाहिए। जब मनुष्य-मनुष्य आपस में घृणा करते हैं, भिन्न-भिन्न देश के वासी होने से या भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी होने से लड़ते हैं, एक-दूसरे का तोपों-बन्दूकों और ज़हरीली गैसों से घात करते हैं, छोटे-बड़े का अभिमान कर एक-दूसरे पर अत्याचार करते हैं, तब वे अपने एक-समान पिता-माता को भूल जाते हैं। क्या अंग्रेज़ भाइयों को पैदा करने वाला प्रभु और है और भारतवासियों का और ? वह एक ही रुद्र हम सब मरुतों का पिता है। वह कभी बुड्ढा न होने वाला, कभी न मरने वाला पिता है। वह हम सबके लिए कल्याण-कर्म करने वाला पिता है और हम सबकी माता यह प्रकृति है जो हमारे लिए उत्तम ऐश्वर्यों का दूध प्रदान कर रही है तथा हमें सब सुख पहुँचा रही है। आओ ? हम इन सब झूठे भेदभावों को भूलकर-काला-गोरा, पूँजीपति-श्रमी, छूत-अछूत, इस देशवासी और उस देशवासी, इन सब भेदों को भूलकर-हम सब मनुष्य, सब-के-सब मनुष्य, मिलकर मनुष्यमात्र के हित का ध्यान करें ; एक-दूसरे के हित का ध्यान करें। अपने शोभन कर्म करने वाले अमर पिता के आशीर्वाद को पाते हुए और करुणामयी सुखदात्री माता द्वारा अपनी सब कामनाएँ पूरी करते हुए अपनी उन्नति का साधन करें और भाई-भाई की तरह एक-दूसरे की सहायता करते हुए मनुष्यता के उद्देश्य की पूर्त्ति में बढ़ते जाएँ।*

निर्वाचन सूचना

आर्य समाज वेद मन्दिर भार्गव नगर जालन्धर की जरनल मीटिंग श्री सरदारी लाल आर्य जी की अध्यक्षता में हुई जिसमें आगामी दो वर्षों के लिए अधिकारियों का चुनाव किया गया। यह चुनाव सर्वसम्मति से हुआ तथा इसमें निम्न अधिकारी चुने गए-: संरक्षक- श्री सरदारी लाल आर्य, श्री कमल किशोर, प्रधान- श्री राज कुमार आर्य, मन्त्री- श्री बिशम्बर कुमार, वरिष्ठ उपप्रधान-श्री सुदेश रत्न, उपप्रधान- श्री रमेश लाल, श्रीमती सत्या देवी जी, उपमन्त्री- श्री लाभ चन्द, श्री रवि गोत्रा, लेखाकार- श्रीमती कान्ता देवी, श्री राज कुमार रत्न, प्रचार मन्त्री- पं. शशिकान्त, श्री सोमनाथ, कोषाध्यक्ष- पं. मनोहर लाल आर्य, प्रैस सेक्रेटरी- श्री वशिष्ठ आर्य, श्री अरूण रत्न।

-बिशम्बर कुमार मन्त्री आर्य समाज भार्गव नगर

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।